P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-I*September-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

पृथ्वीराज राठौड़ का भक्ति एवं श्रृंगार का अनुपम ग्रंथ : एक अध्ययन

कामिनी ओझा
सहायक आचार्या,
हिन्दी विभाग,
जय नारायण व्यास
विश्वविद्यालय, जोधपुर
राजस्थान

सारांश

डिंगल काव्य सिर्फ एक प्रशस्ति परक काव्य ही नहीं है वरन् तत्कालीन सभी साहित्यिक प्रवृत्तियों को अपने में समाये हुए है। एक ओर यह साहित्य हिन्दी की अनेक साहित्यक प्रवृत्तियों का आधार है, तो दूसरी ओर इसमें तद्युगीन सामाजिक संस्कृति की झलक भी है। इसमें जनों की प्रशस्ति हैं, वीरों की वीरता है तो रीति, नीति और भक्ति की त्रिवेणी भी है। शिल्प की दृष्टि से यह काव्य समृद्ध होने के साथ–साथ ऐतिहासिक स्त्रोतों का भण्डार है। डिंगल काव्य परम्परा में वे सभी बातें है जो आपके आधुनिक साहित्य में है। राष्ट्रीय चेतना से लेकर जीवन मूल्यों का सन्दर्भ, आम जन की अभिव्यक्ति, भक्ति और श्रृंगार सभी की सरिता इसमें है। 'क्रिसन रूकमणी री वेलि' भक्ति एवं श्रृंगार का एक अनुपम ग्रन्थ जिसकी रचना पृथ्वीराज राठौड ने की। वैसे तो इनकी कई रचनाएँ है परन्तु 'क्रिसन रूकमणी री वेलि' की रचना के बाद ही सभाओं में इतना मशहूर हो गये कि उन्हें सभाओं का प्रतिष्ठित कवि बना दिया गया। यह ग्रंथ साहित्यिक दृष्टि से इतना उत्कृष्ट कोटि का है कि यह किसी भी भाषा–परम्परा की उपलब्धि भी है।

मुख्य शब्द : राजस्थान की भक्ति, प्रेम, श्रृंगार, मर्यादा, आस्था।

प्रस्तावना

डिंगल राजस्थानी का ही पूर्ववत्ती नाम है डिंगल काव्य में राजस्थान की आत्मा का निवास हैं। यह भाषा पहले मारवाड़ी, मरू–भाषा, मरू–धर–भाषा, मरूदेशीय भाषा आदि नामों से पुकारी जाती थी। जिस प्रकार आजकल हिन्दी ही अनेक उप–भाषाओं में से 'खड़ी बोली' साहित्य की भाषा है उसी प्रकार राजस्थान के सभी वर्गों के लेखकों ने साहित्य रचना के लिए 'मारवाड़ी को अपनाया हैं। राजस्थानी की उप–भाषाओं में 'मारवाड़ी' सबसे प्रधान है और सदा से रही है। डिंगल–गीत चारण कवियों का प्रिय छंद रहा है। डिंगल गीतों के माध्यम से राजस्थानी जन–जीवन और इतिहास पुलकित हो गया है। ''डिंगल का मूलाधार भी मारवाड़ी ही है।''[1] रविन्द्रनाथ ठाकुर के कथनानुसार ''वीरता का भाव, जो की राजस्थानी के प्रत्येक दोहे तथा गीत का सार है स्वयमेव ऐसा अनूठा एवं अलौकिक है कि इसके लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को गर्व हो सकता है।''[2]

''राजस्थान की भाषा डिंगल को अधिकांश साहित्यकारों ने केवल वीर रस के लिए ही उपयुक्त समझा जो वस्तुतः एक भ्रम है।''[3] राजस्थानी साहित्य जनता के जीवन का साहित्य है। जिसका आकार बहुत विशाल एवं विस्तृत है। इसमें जनता के सुख–दुख, आशा–निराशा, उमंग–आघात, हास्य–रूदन सभी का मार्मिक दर्शन मिलता है। विषय विविधता की उसमें कमी नहीं है। डिंगल में रीतिग्रन्थ, भक्तिकाव्य तथा इस प्रकार की रचनायें भी उपलब्ध है। डिंगल वस्तुतः अपभ्रंश शैली का ही विकसित रूप है। राजस्थानी साहित्य तीन शैलियों में लिखा गया है

1. जैन शैली
2. लौकिक शैली
3. चारणी शैली।

जैन शैली विषय

विविधता की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यह अधिकांश धार्मिक है। जैन साहित्य की भाषा में प्राचीनता का पुट पाया जाता है और कहीं–कहीं गुजराती का प्रभाव भी देखने में आता है।

लौकिक साहित्य लिखित रूप में प्रायः नहीं मिलता है। यह साहित्य साधारण जनता का साहित्य है। भक्तों की मुख्य परम्परा ने ही अब इसे जीवित रखा है। भक्ति के अन्तराल में एक हल्की प्रेम कथा भी चलती रहती है जो विविध तरंगघातों को सहती हुई अन्त में भक्ति के समुद्र में समा जाती है। इसी

कारण संत साहित्य को भी लौकिक साहित्य के अन्तर्गत ही परिगणित करेंगे। अनेक सम्प्रदायों की स्थान ने अनेक संत कवियों को जन्म दिया है।

चारणी शैली के लेखक प्रधानतया चारण और गौण रूप में अन्य लोग है। चारणी शैली में दो प्रकार की वेलियां है।

1. ऐतिहासिक
2. धार्मिक पौराणिक

चारणी वेलि साहित्य के अन्तर्गत धार्मिक–पौराणिक साहित्य में निम्न वेलियां है

क्रिसन जी री वेलि

विष्णु संबंधी साहित्य के अन्तर्गत इस वेलि का संबंध कृष्ण से प्रतीत होता है। इसमें रूकमणी के नख–शिख का वर्णन किया गया है। यह 22 छन्दों की छोटी रचना है।

गुण–चांणिक वेलि

यह वेलि कवि की भक्ति भावना से संबंधित है। इसमें कवि ने शुद्ध मन से भगवान को स्मरण करने की प्रेरणा दी है। यह 41 छन्दों की रचना है।

रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि

यह वेलि राम के चरित्र से संबंधित है। इसमें राम का चरित्र नौ रसों–शृंगार, वीर, करूणा, हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत और शांत के माध्यम से चित्रित किया गया है।

महादेव पार्वती री वेलि

यह हर–पार्वती री वेलि के नाम से भी अभिहित किया गया है। इसमें महादेव और पार्वती कथा वर्णित है। कहा जाता है कि ''कवि ने पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन–रूकमणी –री–वेलि से प्रभावित होकर इसकी रचना की। कथा का आधार मुख्य रूप से ''शिव पुराण'' रहा है।''[4]

त्रिपुर सुन्दरी री वेलि

यह नाम से विदित है कि वेलि त्रिपुर सुन्दरी देवी से संबंध रखती है। यह देवी शक्ति का ही एक रूप है। यह 30 पंक्तियों की छोटी–सी रचना है।

क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि

कथा का मूल आधार भागवत पुराण है। यह एक खण्ड काव्य है। कथा में अलौकिक तत्वों का समावेश है। काव्यवस्तु संगठित है।

''समकालीन कवियों में आढा दुरसाजी ने वेलि को ''पांचवा वेद' और उन्नीसवां पुराण बताया तो सायां झूला ने अमृत वेलि।''[5]

धार्मिक वेलि में 'क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि' राठौड़ पृथ्वीराज की प्रमुख रचना है। चारण शैली के कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध राठौड़ हुए है।

''क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि भक्ति शृंगार का अनुपम ग्रंथ है। इसकी भाषा सरस और अलंकृत डिंगल है। कवि पृथ्वीराज जी वल्लभ सम्प्रदाय से दीक्षित थे। इनके ह्रदय में भगवान कृष्ण और ब्रजभूमि के प्रति बडी आस्था थी। ये कृष्ण भक्त तो थे ही, अकबर के प्रति बडी आस्था थी और देशभक्ति के कारण ये महाराणा प्रताप के प्रति अपार श्रद्धा भाव रखते थे।''[6] महाराण प्रताप व पृथ्वीराज के पत्र की घटना सुप्रसिद्ध है। ''क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि में राजस्थानी भाषा पर पृथ्वीराज का अद्‌भुत अधिकार देखने को मिलता है। राजस्थानी भाषा में ऐसी कलापूर्ण कृति संभवतः दूसरी नहीं।''[7]

भक्ति व शृंगार का चित्रण

पृथ्वीराज के ह्रदय की मुख्य भावना यह थी कि भक्ति है तो शृंगार का वर्णन करके भी कवि भक्त–कवि हो सकता है। उसका काव्य भक्ति काव्य हो सकता है। पृथ्वीराज के ह्रदय की मुख्य भावन भक्ति ही है। यह 'वेलि' तथा उनकी अन्य रचनाओं से भी स्पष्ट है वेलि की रचना के उद्‌देश्य का उल्लेख करते हुए कवि कहते है कि

जिणि दीध जनम जगि मुखि दे जीहा, क्रिसन जु पोखण–भारण करै।

कहण तणउ तिण तणउ कीरतन, स्रम कीधां विण केम सरै?

(क्रिसन–रूकमणी री वेलि छंद संख्या–7)

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान का गुण–गान ही वेलि का उद्‌देश्य है, वहीं उसका प्रेरणा स्त्रोत है, उसका कोई लौकिक उद्‌देश्य नहीं है, उसे न किसी सम्राट को प्रसन्न करना है और न किसी लौकिक लाभ की ही उसे आकांक्षा है।

भक्ति काव्य के साथ ही पृथ्वीराज ने उसे शृंगार–काव्य भी कहा है –

'त्री वरणण पहिलऊं कीजई तिण,
गूंथिय जेणि सिंगार – ग्रंथ
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या 8)

भक्ति और शृंगार में कोई विरोध नहीं दोनों एक साथ रह सकते है। वेलि शृंगार काव्य भी है और भक्ति काव्य भी।

राठौड पृथ्वीराज रचित 'वेलि' में जिस सुरम्य शृंगार की धारा प्रवाहित हुई है वही अपने ढ़ंग की एक बेजोड मिसाल है। शृंगार के साथ वीर रस तथा भक्ति रस का सुन्दर समन्वय कवि के कौशल एवं प्रवीण्य की पराकाष्ठा प्रदर्शित करता है।

मर्यादा का मंडन

राजस्थानी कवियों ने वीरता एवं शृंगार सभी विषयों के वर्णन में मर्यादा के उदात्त पक्ष का सदैव ध्यान रखा गया है। पृथ्वीराज राठौड़ कृत डिंगल के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'क्रिसन–रूकमणी–री वेलि' में विवाह से पूर्व देवी–दर्शन को जाती हुई रूकमणी की चिंताकर्षक गति का वर्णन करते हुए कवि कहता है –

सिणगार करे मन कीधउ स्यामा, देवि तणा देहरा दिसि।

होड़ छंडि लागा हंस, मोती लगि पाण ही मिसि।।

(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या 100)

शृंगार सजकर देवालय की ओर जाती हुई रूकमणी की चाल इतनी सुन्दर है कि हंस होड त्यागकर, उसकी पनहियों में जड़े मोतियों को चुगने के बहाने पांवों में जा पड़े। यहाँ पर गुण की सराहना के साथ मर्यादा

निभाने का कौशल विशेष सराहनीय है। हंस जाति का अनादर न हो एवं अत्यन्त सुन्दर गति की भी सराहना हो जाए। अतः मोती के चुगने के बहाने हंसों द्वारा चरण–स्पर्श कराते हुए कवि ने मर्यादा का मंडन किया है।

वेलि का बीज

'वेली तसु बीज भागवत वायउ,
महि थाणउ प्रिथुदास–मुख।
मूळ डाळ, जड़ अरथ, मांडहइ,
सु–थिर करणि चढि, छाँह सुख।।'
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या 288)

कवि ने बताया है कि इस वेलि का बीज भागवत है जो पृथ्वीदास अथवा भक्त (दास) पृथ्वीराज के मुख रूपी पृथ्वी के थांवले में बोया गया है। जहाँ यह अंकुरित हो गया है। इसके मूल पाठ तथा ताल रूपी जड़े हैं। जो अर्थ रूपी दृढ मण्डप पर सुखद छाया करने के लिए ही फैली है।

आस्था का भाव

नित्य, जप, तप, तीर्थ, तपस्या, हवन, सत्संग से हमारे जीवन की दृष्टि बदलती हैं। वेदों में शरीर के उपचार के लिए चार प्रकार की चिकित्सा बतायी गयी है। यह छंद जिसके कारण 'वेलि' धार्मिक काव्य की कोटि का परिचय मिलता है –

महि सुइ खटमास प्रात जळ मंजै,
अप–सपरस–हर जित–इन्द्री।
प्राइम वेलि पढन्तां नित प्रति,
सु–त्री सु–वर तिम सु–वर सु–त्री।।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या 277)

कवि के कहने का तात्पर्य है कि जितेन्द्रिय रहते हुए वेलि का नित्य पाठ करने वाले वर को वांछित पत्नी का स्त्री को वांछित वर की प्राप्ति होती है।

वेलि का पाठ करने से ह्रदय में ज्ञान तथा आत्मा में हरि भक्ति प्रकट होती है। व्यक्ति नित्य वेलि का पाठ करता है तो वह भगवत्कृपा से सदा निरोगी रहता है। उपद्रवी भी स्वयं भयाकुल होकर भाग जाते है। नरोत्तम स्वामी के शब्दों में ''भक्त लोग गीता और सहस्रनाम की भांति उसका नित्य–पाठ करते आये है।''[8]

अलौकिक तत्त्वों का समावेश

इस वेलि में कवि ने चार स्थलों पर अलौकिक तत्त्वों का भी समावेश किया है। जो विशेष प्रसंगों पर जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण घटनाओं से जुड़ा है। किन्तु उसमें प्राचीन सांस्कृतिक परिवेश उभर कर आया है

दिन–लगन सु नेड़उ, दूरि द्वारिका,
भउ पहुंचेस्याँ किसी भति।
सांझि सोचि कुंदणपुरि सूतउ जागिउ परभाते जगति।।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या 47)

वेल का माहात्म्य ऐसा है कि अलभ्य और असम्भव वस्तुएँ भी प्राप्त हो जाती है।

राजस्थान की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण

गौरी पूजन राजस्थान के प्राचीन त्यौहारों में से एक है। राठौड़ पृथ्वीराज ने रूकमणी द्वारा मनोवांछित वर प्राप्त करने की कामना हेतु गौरी पूजन करने का बड़ा भव्य चित्रण अपनी 'वेलि' में किया है

चकडोल लगई इण भांति सु चाली,
मति तइ वाखाणण न मूं।
सखी–समूह माँहि इस स्यामा,
सीळ आवरित लाज–सूँ।।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या 103)

गीतों में व्यक्त शृंगार

भावना में मध्यकालीन राजस्थान की सामाजिक परिस्थितियों तथा मनोभावनाओं का अच्छा चित्रण मिलता है। कुछ स्थल पर मौलिकता की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते है। 'वेणी करी त्रिवेणी बणी' रूकमणी की सफेद फूलों से गुंथी हुई माला त्रिवेणी के समान है। कवि ने जीवन को देखा है और अपने अनुभवों से काम किया है। स्थान–स्थान पर राजस्थान का स्थानिक रंग भी दृष्टिगोचर होता है

कातिग धरि–धरि द्वारि कुमारी,
थिर चीत्रति चित्राम थयी।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या 211)

वर्षा के विधिक रूपक

मानवीय गुणों का उल्लेख करते समय राजस्थानी कवियों ने शूरवीरता, उदारता और सुन्दरता के प्रसंग में वर्षा रूपक का चित्रण विशेष चाव से किया है। महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ ने 'क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि' में वर्षा का वर्णन करते हुए पृथ्वी रूपी सुन्दरी को हरियाली रूपी नीले वस्त्र में आवृत, नदी रूपी हार, दादुर–रूपी नुपूर, श्याम पर्वतमाला–रूपी काजल–रेखा, समुद्री–रूपी करघनी और वीरबहुटी–रूपी कुंकुम–बिन्दु से सुशोभित दर्शाया है –

बग रिखि राजान सु पावसि बइठा,
सुर सूता थिउ मोर–सर।
चातिग रटइ, बळाहकि चंचळ,
हरि सिणगारइ अंबहर।।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या – 191)

ऋतु वर्णन में स्वाभाविक रूप से विविध अलंकारों का प्रयोग हुआ है। रूपक और वर्षा का रूप विविध सांगरूपकों के माध्यम से प्रचुर मात्रा में परिलक्षित होता है

काळी करि कांठळि ऊजळि को रण,
धारे स्रावण धरहरिया।।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या – 192)

कवि ने राजस्थान की ऋतु–परिवर्तन संबंधी विभिन्न विशेषताओं को बड़ी बारीक निगाह से देखा है।

दो विधाओं की समानता स्थापित करना

प्रकृति वर्णन की दो बहुत बड़ी विशेषताएँ है – पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता और वातावरण की तीव्रता। कवि कभी मानव पर प्रकृति का आरोप करता है कभी प्रकृति पर मानव का

धर स्यामा सरिस, स्याम तर जळधर,
गेघूंबे गळि–बाहाँ घाति।
भ्रमि तिणि संध्या–वंदण भूला,
रिखय न लखे सकइ दिन–राति।।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या – 198)

छंदों में भावों की सजीवता

राठौड़ पृथ्वीराज ने अपनी उपमाओं से उपमेय–उपमान के साथ ही दोनों के आस–पास के पूरे वातावरण को ही शब्दों के माध्यम से अपने भावों की सजीवता को ला खड़ा करते है।

संग सखी सीळि कुळि वैसि समाणी,
पेखि कळी पदमणी परि।
राजति राज–कुँवरि राय–अंगणि,
उडियण वीरज अंबहरि।।
(क्रिसन–रूकमणी–री–वेलि छंद संख्या – 14)

इस छंद से कवि का भाव यह है कि जैसे स्वच्छ आकाश में तारागणों के मध्य चन्द्रमा शोभायमान हो रहा है। कवि ने उपमान और उपमेय दोनों के प्रत्युत्तर में कवि ने रूकमणी की उपमा चन्द्रमा तथा रूकमणी की सखियों की समता तारागणों से की है। कवि में भावों के अनुरूप बहने की शक्ति है।

काव्य की वस्तु बहुत संक्षिप्त है। प्रासंगिक वस्तु के लिए तो खंडकाव्य में अवकाश ही नही होता, तो फलतः वेलि में कोई प्रासंगिक कथा नहीं है। कथा का आधार भागवत पुराण है। वेलि कथा नहीं है काव्य है। वेलि के कवि का उद्‌देश्य रूकमणी और कृष्ण की कथा कहना नहीं है। भागवत से कथा का ढाँचा लेकर उससे कवि ने कविता–कामिनी की सजीव प्रतिमा गढ़ी है।

''पृथ्वीराज ने वेलि की रचना करके तो डिंगल को बहुत बडी देन दी है परन्तु उनके स्फुट गीत भी उन मुक्ताओं के समान है जिनकी कांति वेलि की कांति की तरह ही काल के अंधकार को सदैव विदीर्ण करती रहेगी।''[9] डिंगल गीत राजस्थानी का मौलिक छंद है और यहां की जनता में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। वास्तव में अमर नाम के लिए 'गीतडो या भीतड़ो' की कहावत प्रसिद्ध है ही, किन्तु लोकगीतों से कई गुना अधिक अमरता प्रदान करने वाले राजस्थानी डिंगल–गीत है। डिंगल काव्य वीर, श्रृंगार और भक्ति रस की त्रिवेणी के रूप में प्रसिद्ध है।

विश्व की कई संस्कृतियाँ आयी, युद्ध हुए, संस्कृतियों का आदान–प्रदान हुआ। समय के बदलाव के साथ–साथ सभ्यता, संस्कृति, रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार में बदलाव आने लगा। परन्तु अपनी संस्कृति को दुर्बल नहीं बनाया और आगे भी हमें अपनी ये सोच प्रबल बनाए रखनी है। साहित्य एवं आलोचना के वृहद क्षेत्र से दरकिनार किये हुए राजस्थानी समाज एवं संस्कृति की पहचान को और अधिक बढ़ाना है तथा धार्मिक इतिहास से जोड़े रखना है।

उद्‌देश्य

काव्य की वस्तु बहुत संक्षिप्त है। प्रासंगिक वस्तु के लिए तो खंडकाव्य में अवकाश ही नही होता, तो फलतः वेलि में कोई प्रासंगिक कथा नहीं है। कथा का आधार भागवत पुराण है। वेलि कथा नहीं है काव्य है। वेलि के कवि का उद्‌देश्य रूकमणी और कृष्ण की कथा कहना नहीं है। भागवत से कथा का ढाँचा लेकर उससे कवि ने कविता–कामिनी की सजीव प्रतिमा गढ़ी है।

निष्कर्ष

विश्व की कई संस्कृतियाँ आयी, युद्ध हुए, संस्कृतियों का आदान–प्रदान हुआ। समय के बदलाव के साथ–साथ सभ्यता, संस्कृति, रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार में बदलाव आने लगा। परन्तु अपनी संस्कृति को दुर्बल नहीं बनाया और आगे भी हमें अपनी ये सोच प्रबल बनाए रखनी है। साहित्य एवं आलोचना के वृहद क्षेत्र से दरकिनार किये हुए राजस्थानी समाज एवं संस्कृति की पहचान को और अधिक बढ़ाना है तथा धार्मिक इतिहास से जोड़े रखना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. क्रिसन–रूकमणी–री वेलि : नरोत्तमदास स्वामी, राजस्थानी ग्रन्थागार, तृतीय संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या–2
2. डिंगल साहित्य : डॉ. गोवर्द्धन शर्मा, पृष्ठ संख्या 148
3. डिंगल साहित्य : जगदीश श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 20
4. राजस्थानी वेलि साहित्य : डॉ. नरेन्द्र भानावत, साहित्य सचिव – राजस्थान साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण–1965 : पृष्ठ संख्या 182
5. राजस्थानी वेलि साहित्य : डॉ. नरेन्द्र भानावत, साहित्य सचिव – राजस्थान साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण–1965 : पृष्ठ संख्या 123
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ संख्या 241
7. क्रिसन–रूकमणी–री वेलि : नरोतमदास स्वामी, राजस्थानी ग्रन्थागार, तृतीय संस्करण–1998, पृष्ठ संख्या 16
8. क्रिसन–रूकमणी–री वेलि : नरोतमदास स्वामी, राजस्थानी ग्रन्थागार, तृतीय संस्करण–1998, पृष्ठ संख्या 33
9. प्राचीन डिंगल गीत साहित्य, डॉ. नारायण सिंह भाटी : पृष्ठ संख्या 252